06 रोजमर्रा जीवन में सौन्दर्यानुभूति

तरित भट्टाचार्जी

कलाकृतियों की रचना के लिए रोजमर्रा की, आमतौर पर उपलब्ध सामग्री को प्रयोग में लाने के विचार का शिक्षा पर जबरदस्त प्रभाव पड़ता है।

"उत्तर–पूर्व के एक दूर–दराज गाँव के पूर्वी आसमान में प्रकाश, मेरी एक सजीव याद है। याद सर्दियों की एक अनजानी, ओस भरी भोर की जिसमें ओस की बूँदें यूँ लग रही थीं मानो मोती जड़े हों। पुरानी यादों की एक लहर मुझ पर से हो गुजरती है और आँगन के एक कोने में पड़े सूखी घास के गट्ठर की तस्वीर मेरी आँखों के सामने उभरती है। पथ में पास–पास खड़ी कुछ झोपड़ियाँ, जीवन्त ऋतुओं के साथ हर तीन महीनों में बदलता, एक नया रूप लेता आसपास का सम्पूर्ण परिदृश्य। सभी दृश्य पुरानी यादों से तरबतर। धान के खेतों के आसपास हरे, गेरुए और भूरे रंगों की आभा बिखेरते तालाब, आम और खजूर के पेड़ों के झुण्ड। मेरी नजर दूर क्षितिज से पार तक जाती है और मेरी आँखें एक अनजाने परिप्रेक्ष्य में आ टिकती हैं।"

गाँव के लोगों का अपना सशक्त सौन्दर्यबोध होता है और यह उनके जीवन का मानो एक प्राकृतिक, स्वाभाविक हिस्सा है। रोज, सुबह की पहली किरण से गोधूली के वक्त तक, एक पूरी पीढ़ी के लोग पर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों के साथ बड़े होते हैं। इस सन्दर्भ के लिए आवश्यक दक्षताएँ, कारीगरी और सृजनात्मकता का होना उनके लिए एक स्वाभाविक प्रवृत्ति की तरह है। इस यात्रा में सम्भवत: प्रत्येक पीढ़ी इन रोजमर्रा संसाधनों से अपने तौर–तरीके और साधन खोज सकती है।

पुरानी पीढ़ियों ने आन्तरिक और बाह्य के बीच रिश्ता

बनाया, दक्षताओं और सामग्री को एकीकृत किया, झोपड़ियाँ बनाईं, औजार गढ़े, अक्लमन्दी से कारीगरी का काम किया और चिकनी मिट्टी जैसे बहुतायत में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को प्रयोग में लाए। मानव की यात्रा पत्थरों, मिट्टी और टहनियों को हाथ में लेने से प्रारम्भ हुई। उसने इन्हें रूप–आकार दिया, डिजाइन बनाए। सदियों बाद पहिये की ईजाद कई पीढ़ियों के बीच से होकर गुजरी। फिर औद्योगिकीकरण अपने साथ सुख–आराम लाया। आराम की इस अवस्था में इन्सान ने मेहनत करने की अपनी क्षमता को धीरे–धीरे पीछे छोड़ दिया, 'हाथ से काम करने' की आदत भी पीछे छूट गई। एक नई पीढ़ी उभरकर आई, एक नई भाषा की शुरुआत हुई और इस पीढ़ी ने अपने सुख,सुविधा,आराम का दायरा खोजना शुरू कर दिया, वह दायरा जिसमें वह सहज महसूस करता हो। प्रौद्योगिकी ने तकनीकी विशेषज्ञों की एक नई पीढ़ी को जन्म दिया और जैसे–जैसे दुनिया की रफ्तार तेज से तेजतर होती गई, इन्सान प्रौद्योगिकी का शिकार बनता चला गया; उसने

अपनी बुद्धि खो दी, चालाक हो गया और चालें चलने लगा। तत्पश्चात प्रौद्योगिकी ने हमारे अन्तस में भी जगह बना ली और उसने हमारे अन्दर और बाहर की दुनिया में सामंजस्य बैठा पाना भी मुश्किल कर दिया।

हमारे अन्दर और बाहर के एकीकरण, उनमें सामंजस्य के लिए जरूरी है कि प्रकृति और उसके संसाधनों के अवलोकन की तीव्र इच्छा और एक नवाचारी सतर्कता हो : इसी के चलते विधियों और सामग्री के सामंजस्य और एकीकरण में भी मदद मिलेगी। प्राकृतिक संसाधनों और अत्यधिक कचरे के चलते चीजों को पुन: प्रयोग में लाने का व्यापक भाव पैदा हो सकता है और उपयोग की भावना भी।

किसी बात की स्वीकृति न होना या अपनी मन–मर्जी से उसे रद्द किया जाना किसी भी परम्परा या व्यवस्था के लिए सामान्य बात है। सम्बन्धों में अस्वीकृति की एक अहम भूमिका रहती है। अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में हम अपने बिल्कुल आसपास की बहुत सी लाभकारी चीजों का परित्याग करते हैं।

वक्त की जरूरत यह है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था अक्लमन्दी से समावेश को गले लगाए न कि बहिष्कार या वर्जना को। आने वाली पीढ़ियाँ शायद एक नए परिप्रेक्ष्य को देख पाएँ– अस्वीकार हिंसा की एक धीमी प्रक्रिया है, और यहीं से शुरू होती है।

मैं उत्तर–पूर्व भारत के ग्रामीण इलाकों में बड़ा होने का अपना अनुभव साझा करना चाहूँगा। इससे मिलता–जुलता परिवेश कहीं भी पाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर जब आप अपने आसपास के परिवेश में से होकर निकलते हैं तो आपको कई त्यागी हुई चीजें मिलेंगी – मसलन, नारियल का खोल और इसे एक मुखौटे का रूप दिया जा सकता है। इसी प्रकार आसपास पड़े करकट से कुछ भी बनाया जा सकता है। हमारे पर्यावरण–परिवेश में बहुत कुछ ऐसा है जिसे हम 'रोजमर्रा सामग्री' कह सकते हैं।

हमारे आसपास बहुत संसाधन उपलब्ध हैं – उदाहरण के लिए चिकनी मिट्टी को हाथों के तालमेल से रूप–आकार दिया जा सकता है – और यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हाथ बहुत ही सहज–स्वाभाविक तरीके से किसी भी चीज को रूप–आकार देता है और डिजाइन रचता है। चिकनी मिट्टी को हाथ में पकड़ना हमारी इन्द्रियों में स्पर्श का एहसास जगाता है। यह सम्पूर्ण अनुभव स्वाभाविक एहसास और स्पर्श का है और हम कह सकते हैं कि यह

रोमांचित कर देने वाला अनुभव है। ऐसा ही एक और अनुभव है सूखी घास को बाँधने और आकृतियाँ रचने का अनुभव। इन अनुभवों के माध्यम से विधियों और सामग्रियों को एकीकृत करना, उनमें सामंजस्य बैठाना सीखा जा सकता है।

चिकनी मिट्टी, कीचड़, पत्थर, पुराने अखबार, कार्डबोर्ड,

बक्से, नारियल के खोल, लकड़ी का बुरादा, खाली बोतलें – ये सब बहुत संख्या में हमारे दैनिक जीवन के दौरान उपलब्ध रहते हैं। हम जानते ही हैं कि प्लास्टिक ने हमारे पर्यावरण के साथ बहुत बड़े पैमाने पर खिलवाड़ किया है, क्योंकि वह स्वाभाविक तरीके से विघटनशील नहीं है। एक बार इस्तेमाल में आ जाने के बाद हम उसे पुन: प्रयोग में नहीं लाते, और यूँ ही फैंक देते हैं, अपने आसपास के कूड़े–कचरे में इजाफा करते हैं। इस प्लास्टिक का पुन: प्रयोग किया जा सकता है, तो क्यों न अलग ढंग से ऐसा किया जाए? मुखौटे काटना, उन्हें इन प्लास्टिक बैग्स में रखना और उन्हें काली या गहरे रंग की किसी पृष्ठभूमि में प्रदर्शित करना – यह ऐसा ही एक तरीका है।

सौन्दर्यानुभूति और रचनात्मक व्यवस्था की खोज दिन–प्रतिदिन के जीवन में एक अन्तर ला देती है। इसके लिए जरूरत है अवलोकन की एक सशक्त भावना और सतर्कता की। साथ ही चाहिए सृजन की अन्त:प्रेरणा और उसका अन्तर्बोध, जिसकी वजह से हम अपने आसपास उपलब्ध संसाधनों को रूप–आकार दे पाते हैं।

साँझ के तारे के बाद बादलों की गरज और आम के पेड़ों के झुरमुट के आसपास घूमते, आमों के साथ–साथ टहनियाँ इकट्ठा करते हुए लोग – यह मेरे बड़े होने के दिनों की यादें हैं। आमों के कुंज से प्राप्त इन खजानों से वहाँ के ये मूल निवासी गारे की दीवारों पर लटकती हुई एकरेखीय मूर्तिकला के नमूने प्रस्तुत करते थे – जिनमें सौन्दर्यानभूति के शानदार भाव झलकते थे और जो कारीगरी से भी कहीं आगे का एक अनुभव था।

हमारे अन्दर एक ऐसी शान्ति है जो लाखों साल पीछे तक जाती है। इन्सान ने अपना सफर जंगली घास के बीच से शुरू किया था। इस आदिमकाल ने अभी भी हमारे मानव अस्तित्व के अन्तस में कहीं अपनी जगह बना रखी है, वह हममें अब भी मौजूद है। यह बुद्धि और विवेक हमें इस यात्रा को पैने अवलोकन के साथ जारी रखने में मदद करता है। बहुत मुमकिन है कि इस बुद्धि के साथ हम अपने आसपास की प्रकृति और उसके संसाधनों की जाँच और खोजकर सकें और हमेशा प्रौद्योगिकी पर आश्रित न रहें।

एक व्यवस्था ऐसे ज्ञानार्जन के लिए सृजनात्मक और नवाचारी जगह की छानबीन और खोज कर सकती है जो मूल रूप से स्वयं सीखने पर आधारित हो। अवलोकन के लिए जगह बनाने और आसपास के संसाधनों से रूप–आकार देने के लिए आप सूखी घास को बाँधकर खिलौने बना सकते हैं या नारियल के खोलों से मुखौटे। आसानी से उपलब्ध अखबारों का भी प्रयोग किया जा सकता है; एक बोतल के पात्र से मूर्तिकला के आयामों की पड़ताल हो सकती है; और कार्डबोर्ड शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों को एकीकृत कर सकता है। सौन्दर्यानुभूति मूल रूप से शिक्षा में हमारे रचनात्मक पालन–पोषण का एक अभिन्न अंग है।

पुराने समय से भारत में एक बच्चा आमतौर पर एक सशक्त मौखिक परम्परा तथा धार्मिक और सामाजिक उत्सवों के दायरे में बड़ा होता है, जो मूलत: रंग–बिरंगी छटा लिए होते हैं और सृजनात्मक विकास और प्रगति पर जिनका

जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। यह माहौल एक कभी न खत्म होने वाली यात्रा का हिस्सा है।

कोशिश की जा सकती है कि हमारे पर्यावरण में उपलब्ध कुछ विशेष वस्तुओं को संसाधन के तौर पर इस्तेमाल करने की क्या सम्भावना है, इसे देखा–समझा जाए। रोजमर्रा की सामग्री को कलाकृतियाँ बनाने के लिए प्रयोग में लाने की अवधारणा का शिक्षा पर सशक्त प्रभाव पड़ता है। त्याग दी गई वस्तुओं को नए उत्पाद के तौर पर प्रयोग करने के लिए, उनके पुन:निर्माण की प्रक्रिया को सकारात्मक तरीके से प्रयोग में लाने के लिए, एक जागरूक कोशिश की जरूरत रहती है; कचरे को इस्तेमाल करने की किफायत सम्पूर्णता में दैनिक जीवन की सौन्दर्यशास्त्रीय समझ की ओर ले जाती है – इतना ही नहीं, व्यावहारिकता में यथार्थ से जुड़े होने के भाव, एक खास किस्म की निश्छलता, स्वत: स्फूर्त प्रवृत्ति तथा ऊर्जा, और शायद सच्ची समझ और बुद्धि की ओर ले जाती है।

इन्सान ने हमेशा स्मृति को खोजने–छानने की कोशिश की है। उसे वस्तु और यथार्थ के बीच सम्बन्ध बनाने वाले साधन–संसाधन के तौर पर प्रयोग में लाने की कोशिश भी की है। उदाहरण के लिए एक छोटी नदी के किनारे किसी खेत में खड़ा बिजूका एक ऐसा दृश्य बनाता है जिससे क्षितिज के पार तक का व्यापक फलक हमारे सामने आता है ।

मेरी याद फिर से एक अनजानी भोर की ओर जाती है, एक आँगन में पड़े सूखी घास के गट्ठड़ का सजीव हिस्सा – एक प्रेरणा, ऊर्जा, एक यात्रा जो अब भी जारी है।

तरित भट्टाचार्जी *एक चित्रकार, प्रिन्ट निर्माता और कला शिक्षक हैं। उन्होंने कला में अपनी शिक्षा कलाभवन, शान्तिनिकेतन से प्राप्त की। वर्तमान में वे* ***द स्कूल, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन ऑफ इण्डिया, चैन्नई*** *में आर्ट और डिजाइन का शिक्षण कर रहे हैं। वे दैनिक जीवन में उपलब्ध संसाधनों से विभिन्न तरह की सामग्री और विधियों की खोज–पड़ताल करते रहे हैं। उनके रेखाचित्रों, प्रिन्टों और चित्रकला के विषय मूल रूप से आम आदमी के परिवेश और वातावरण तथा दैनिक जीवन से आते हैं। उनकी रचनात्मक यात्रा में एक बच्चे की स्वाभाविक, स्वत:स्फूर्त प्रवृत्ति हमेशा से एक प्रेरणा रही है। उनसे tarit.mrittika@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।* ***अनुवाद:*** *रमणीक मोहन*